योग क्यों ?

☐ डा. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'

यह संसार दुःखालय है। दुःख मनुष्य की चिन्तन नियति है। दुःख के बीच मनुष्य सुख की तलाश में कस्तूरीमृग की तरह भटकता रहता है। कभी वह शारीरिक एवं भौतिक पदार्थों में सुख ढूंढता है, कभी वह अपनी अनन्त इच्छाओं की तृप्ति का निष्फल उपाय खोजता है। पर उसे वास्तविक सुख या आनन्द कब मिल पाता है और फिर उसे इस प्रकार की भ्रामक खोज में सुख मिल भी कैसे सकता है क्योंकि कठोपनिषद् में कहा गया है, **"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।"** और इच्छाओं को भोग से तृप्त करने का श्रम तो मात्र एक छलावा है। मनुस्मृति में कहा गया है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते॥

—"मनुष्य की कामनायें भोग करने से तृप्त नहीं होतीं किन्तु जैसे अग्नि की ज्वाला घृत डालने से बढ़ती है उसी प्रकार कामनाएँ भोग करने से और भी बढ़ जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दुःखों की निवृत्ति सांसारिक पदार्थों से नहीं हो सकती, सांसारिक पदार्थों के भोग से तृष्णा बढ़ती है," सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। भर्तृहरि ने इस बात को बड़े स्पष्ट ढंग से कहा है—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता—
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता—
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

—"भोगों को हमने नहीं भोगा, किन्तु हम ही भोगे गये। तप नहीं तपे गये, किन्तु हम ही तपे गये, समय नहीं कटा, किन्तु हम ही कट गये, सचमुच तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, हम ही जीर्ण हो गये।" इस प्रकार संसार में दुःख से कोई मुक्त नहीं। अंग्रेजी उपन्यासकार हार्डी का कथन भी इस बात को दोहराता है, "Happiness is an occasional episode in the general drama of pain." दुःख के सामान्य नाटक में सुख केवल एक आकस्मिक घटना है। कवि कीट्स की ये पंक्तियाँ कितनी सही हैं—

The weariness, the fever, and the fret.
Here where, men sit and hear each other groan
Where palsy shakes a few, sad, last grey hairs
Where youth grows pale, and spectre-thin, and dris,
Where but to think is to be full of sorrow
And leaden-eyed despairs;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—"यह जीवन भव-ताप से जल रहा है। इस संसार में हम बैठकर एक दूसरे की कराहटें सुनते रहते हैं, यहाँ रोग और जरा है, यहाँ यौवन शनैः शनैः रिसता रहता है; यहाँ पर सोचना मात्र दुःख से भर जाना है, निराशाओं से दब जाना है।"

जीवन की इस भयावह स्थिति में मनुष्य क्या करे ? क्या वह इसी प्रकार सतत दुःख की ज्वाला में जलता रहे या इससे मुक्ति का कोई उपाय सोचे ? आखिर, अपना उद्धार तो उसे अपने आप ही करना है, '**उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं**।' मनुष्य को यदि इस स्थिति से छुटकारा मिल सकता है तो वह केवल उसकी योगमय स्थिति से ही मिल सकता है। यदि वह अपने क्रिया-कलापों को योग से समन्वित करे तो निश्चित रूप से वह आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। भगवान् कृष्ण का आदेश उसे शिरोधार्य होना चाहिए—"**योगस्थः कुरु कर्माणि**।" पर पहले उसे जानना चाहिए कि '**योगस्थ**' होने का क्या अर्थ है। संसार के द्वन्द्वों का अस्तित्व इसलिए नहीं मिट सकता क्योंकि वे एक प्रकृति-सत्ता के अंग हैं, हाँ, यदि हमारा दृष्टिकोण बदल जाये तो कम से कम हमारे लिए उनका कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। दृष्टिकोण का यह परिवर्तन ही हमारे आत्म-विकास का प्रथम सोपान है। योग की प्रक्रिया से हम न केवल सुखी होते हैं अपितु इसके सतत अभ्यास से हमारे जीवन में एक विशेष प्रकार की भास्वरता आती है। इसलिए सबसे पहले मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को जाने, पहचाने—'**आत्मानं विद्धि**'। जब वह अपने को जान जायेगा तो उसे सही 'स्थिति' का ज्ञान हो जायेगा। वह अज्ञानी इसलिए है क्योंकि उसका चित्त विभिन्न क्लेशों (मलों) से आवृत्त है। जब इस मलिनता को वह पहचान जायेगा तो उसके प्रक्षालन का यत्न करेगा। जब इन अशुद्धियों का परिहार हो जायेगा तो वह आत्मा में 'स्थित' हो जायेगा। अतः मनुष्य सबसे पहले अपने 'स्वरूप' को जाने, शरीर को जाने, चित्त को जाने, आत्मा को जाने। इस प्रक्रिया में योग उसकी सहायता कर सकता है। पर योग है क्या ? क्या मात्र व्यायाम, वर्जिश अथवा जिम्नास्टिक्स का नाम योग है ? क्या केवल ध्यान का नाम योग है ? क्या किसी चिकित्सा-पद्धति का नाम योग है ? क्या भजन, कीर्तन, सन्ध्या-उपासना का नाम योग है ? ये प्रश्न इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि आज के इस युग में योग के सम्बन्ध में सही 'समझ' का प्रायः अभाव है। योग की यत्र-तत्र-सर्वत्र लोकप्रियता तथा व्यापक प्रचार-प्रसार के बावजूद भी योग का वास्तविक अर्थ कितने लोग जानते हैं। यह स्थिति योग तथा हमारे दोनों के लिए अहितकर है।

सही अर्थों में योग 'अनुशासन' का ही नाम है। सभी तरह का अनुशासन—शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आत्मिक। योग के सतत अभ्यास से हमें न केवल शारीरिक निरोगता, मानसिक स्वस्थता, नैतिक पुष्टता और आत्मिक-सम्पूर्णता प्राप्त होती है अपितु इसके द्वारा हम एक विशेष 'जीवन-दृष्टि' विकसित करते हैं। यही जीवन-दृष्टि हमारे दुःख को मिटा सकती है, हमें सुखी बना सकती है, हमें अपने गन्तव्य तक पहुँचा सकती है। इस 'दृष्टि' के लिए हम क्या करें ? इस प्रश्न का उत्तर है कि हम योग का मार्ग अपनायें। यह मार्ग सतत साधना का मार्ग है, कठिन पथ है; कहा गया है "**क्षुरस्य धारा निषिता दुरत्यय दुर्गं पथस्तत्-कवयो वदन्ति**।" योग (आत्म-साक्षात्कार) का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है, इसे आत्मदर्शी लोग छुरे की धार पर चलने के सदृश बतलाते हैं। पर, आत्म-विकास का कोई अन्य विकल्प नहीं। मनुष्य को चाहिए कि वह उपनिषद् के आप्त वचनों को न भूले—

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिस्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्ते त्याहुर्मनीषणः ॥

—"मनुष्य का शरीर एक रथ है, इस रथ का सवार आत्मा, सारथी बुद्धि, लगाम मन और घोड़े इन्द्रियाँ हैं। इस रथ को भी ऐसा ही होना चाहिए कि आत्मा के अधीन बुद्धि, बुद्धि के अधीन मन और मन के अधिकार में इन्द्रियाँ हों तभी यह रथ अभ्युदय और निःश्रेयस् रूप धर्म मार्ग पर चलकर सवार को निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देने का कारण बन सकता है।"

योग का मार्ग ही व्यष्टि का कल्याण कर सकता है तथा व्यष्टि के विकास के द्वारा समष्टि का हित निश्चित है। योग की परम्परा भारत में अति प्राचीन है। भारत के आध्यात्मिक चिन्तन की मुख्य धाराओं—नैगम (वेदमूलक), बौद्ध और जैन—में योग की प्रचुर चर्चा है। योग जन-जीवन में इतना घुल मिल गया है कि धर्म, अध्यात्म, तंत्र-साधना, भक्ति, चमत्कार, जादू-टोना आदि का पर्याय-सा बन गया है। योग की अप्रतिहृत धारा अबाधरूपेण हमारे देश में बहती रही है।

योग का मार्ग कठिन अवश्य है पर असम्भव नहीं। 'योग-दर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि ने अष्टांग-योग की रचना 'व्यक्ति' के आत्म-निर्माण एवं विकास हेतु की थी तथा व्यक्ति के माध्यम से समाज का कल्याण ही उनका अभीष्ट था। योग की संश्लिष्ट प्रणाली—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—ही हमारी वर्तमान दुखद स्थिति का समाधान है। योग एक स्वस्थ विज्ञान है जो अपनी विशेष पद्धति द्वारा मानव को न केवल स्वस्थ, संयमित तथा नीरोग बनाता है, अपितु उसे आत्मिक विकास के माध्यम से परमात्मा का साक्षात्कार कराता है। योग-संस्थान, सान्ताक्रूज बम्बई के योगेन्द्रजी के अनुसार, "योग उस जीवनप्रणाली का द्योतक है जो शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक स्तरों पर पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करती है और मनुष्य में जो कुछ भी त्याज्य है उसे सर्वश्रेष्ठ तत्त्व में बदल देती है। इस उच्च जीवन-कला और जीवन-विज्ञान की सिद्धि के लिए आत्म-संस्कार की ऐसी विस्तृत और व्यावहारिक पद्धति बनाई गयी है जो शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों के परस्पर विनिमयशील तथा सन्तुलित विकास द्वारा शरीर को नीरोग, मन को शान्त तथा नैतिक जीवन को शुद्ध बनाकर उसे आत्म-साक्षात्कार का अभ्यासी बनाती है।" यम (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान) के अभ्यास से व्यक्ति में व्यष्टिगत एवं समष्टिगत शुचिता उत्पन्न होती है; आसनों के द्वारा शारीरिक स्वस्थता और नीरोगता मिलती है; प्राणायाम से प्राण-शक्ति अर्जित होती है, प्रत्याहार से आन्तरिक और बाह्य ज्ञानेन्द्रियों को संयमित करके अन्तर्मुखी बनाने का प्रयास होता है। 'धारणा' और 'ध्यान' से चेतन-अचेतन शक्तियों का उपयोग कर आत्म-साक्षात्कार की दिशा में बढ़ा जाता है, अन्त में परमानन्द की स्थिति समाधि तक पहुँचा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यम-नियम, दोनों ही हमारे व्यक्तिगत एवं सामाजिक आचरण को अनुशासित कर सकते हैं, पर विशेष रूप से **अहिंसा और अपरिग्रह** हमारे आज के विश्व की परमावश्यकता है। आज का समाज अहिंसा के लिए प्यासा है। आज सर्वत्र हिंसा का भैरवी ताण्डव है, मृत्यु एवं ध्वंस की विभीषिका है। विज्ञान की तथाकथित उपलब्धियों से प्रमत्त मानव अहिंसा से विमुख है। पर उसे नहीं मालूम कि अहिंसा और अपरिग्रह ही आज की हिंसामय परिस्थितियों पर अंकुश लगा सकते हैं। अहिंसा बैर का प्रतिकारक (Antidote) है, "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।" अपरिग्रह के होने पर अहिंसा तो स्वतः फलित होगी ही। यदि लोभ नहीं है तो द्वेष क्यों उत्पन्न होगा और द्वेष के बिना हिंसा का जन्म कैसे होगा ? भय, दुर्बलता या उद्विग्नता से हिंसा का उद्‌गम होता है, अहिंसा के साथ-साथ अभय और अक्रोध पनपते हैं। आज अहिंसा का दृष्टिकोण ही हमें अवश्यंभावी विनाश से बचा सकता है :

ज़मी का चप्पा चप्पा क़त्लगाहे आदमियत है
ख़ुदा महफ़ूज़ रक्खे आये दिन कातिल बदलते हैं।

इन 'क़ातिलों' को केवल अहिंसा ही परास्त कर सकती है। अहिंसा से प्रेम जन्म लेगा, हमारे हृदय में सारे संसार का दर्द होगा :

खंजर चले किसी पर तड़पते हैं हम 'अमीर'
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है।

जब हम ऐसा सोचने लगेंगे तो किसी से क्यों नफ़रत करेंगे, किसी को क्यों मारेंगे ? अहिंसा के साथ यदि अपरिग्रह होगा तो व्यक्ति हिंसा, द्वेष, वैमनस्य आदि दोषों से मुक्त रहेगा, वह सत्यशील होगा, क्योंकि वह निर्भय होगा, वह किसी की सम्पत्ति को क्यों चुराना चाहेगा (अस्तेय)? ऐसा व्यक्ति संयमी होगा और ब्रह्मचर्य का सतत पालन करेगा। उसके जीवन में शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान स्वयमेव प्रविष्ट हो जायेंगे। अहिंसा और अपरिग्रह का अभ्यासी व्यक्ति वैयक्तिक-विघटन तथा सामाजिक वैषम्य को मिटाते हुए समाज में प्रेम, सद्भाव, विश्वबन्धुत्व आदि दिव्योन्मुख मानवीय गुणों से एक विशेष वातावरण का निर्माण करेगा।

और फिर, यह 'वातावरण' आज की परिस्थितियों की माँग भी है। मानव की भौतिक एवं पार्थिव उपलब्धियाँ अपरिमेय हैं, असीम हैं। उसकी विकास-यात्रा अप्रतिहत एवं अबाध है। उसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं : राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में—

और मनुज की नयी प्रेरक ये जिज्ञासायें।
उसकी वे सुबलिष्ठ सिंधु-मंथन में दक्ष भुजायें।
अन्वेषिणी बुद्धि वह तम में भी टटोलने वाली।
नव रहस्य, नव रूप प्रकृति का नित्य खोलने वाली।
इस भुज, इस प्रज्ञा के सम्मुख कौन ठहर सकता है ?
कौन विभव जो कि पुरुष को दुर्लभ रह सकता है ?

पर यदि हमने योग का मार्ग नहीं अपनाया तो क्या हम इस 'विभव' को भोगने के लिए बच पायेंगे ? अतएव, आवश्यकता इस बात की है कि हम योग के व्यावहारिक एवं अखंडित

आसमस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग और स्वरूप का अनुसरण करें, स्वयं को योगमय बनायें तथा समाज को योगमय बनायें। तभी हम पूर्ण स्वस्थ, सद्भावपूर्ण, नीरोग, तथा शांत संयमी बन सकेंगे तथा हमारा समाज प्रेममय हो सकेगा। सभी सुखी होंगे, सभी स्वस्थ-नीरोग होंगे, सब एक-दूसरे का कल्याण चाहेंगे, किसी को कोई दुःख नहीं होगा। आज हमारा दर्द (दुःख) बहुत बढ़ चुका है, इसका उपचार होना अत्यावश्यक है। केवल योग ही इस 'पीर' का निवारण कर सकता है। दुष्यंत कुमार के शब्दों में :

हो गयी है पीर पर्वत सी, पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

जाहिर है, हमारे आज के रेतीले जीवन में योग-गंगा की निर्मल धारा अविरुद्ध प्रवाहित होती रहनी चाहिए।

आवास
७ य २ जवाहरनगर, जयपुर।

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org